International Journal of Creative Research Thoughts
Volume 1, Issue.1, January 2013
ISSN:-2320-2882

ORIGINAL ARTICLE

चेतना परिष्कार एवं ज्ञानयोग– 'स्वामी रामतीर्थ'

डॉ. जितेन्द्र शर्मा

एसोसियेट प्रोफेसर–दर्शनशास्त्र
महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट

शोध आलेख सार

जीवन और जगत के यथार्थ स्वरूप का अनुसंधान भारतीय मनीषा की अन्यतम उपलब्धि है। क्या मनुष्य भोग वासनाओं की सिद्धि की तलाश में भटकता हुआ वन्य पशु है, अथवा उसका स्वरूप आध्यात्मिक है? क्या चाक्चिक्य पूर्ण जगत अपने यथार्थ स्वरूप में हमारे समक्ष दृष्टिगत होता है अथवा यह सब माया है, अनित्य और दुःख कारक है। जब तक जीवन और जगत से सम्बन्धित इन रहस्यों का उद्घाटन नहीं हो जाता तब तक व्यक्ति की स्थिति पानी से भरी थाली में पड़े बैगन जैसी होती है। वह डूबता–उतराता रहता है, भोग–वासनाओ के सागर में। परिणामतः जीवन के स्वरूप को परिभाषित न कर पाने के कारण जीवन लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाता है। प्रस्तुत शोध आलेख में वेदान्ततिक आर्श परम्परा के समकालिक भारतीय चिन्तक स्वामी रामतीर्थ के मतानुसार मनुष्य के तात्विक/ यथार्थ स्वरूप की व्याख्या की गयी है, साथ ही इस प्रश्न पर विचार किया गया है कि वे कौन से कारक होते हैं जिनके कारण मनुष्य अपने ब्राह्मी स्वरूप को विस्मृत कर जाता है? स्वामी रामतीर्थ के ही मतानुसार इस विषय पर भी गवेषणात्मक चितंन किया गया है, कि ज्ञानयोग की सम्यक् साधना द्वारा मनुष्य माया–मोह के बन्धन को तोड़ता हुआ स्व व्यक्तित्व को बामन से विराट बना सकता है। क्षुद्र जीवात्मा के पास को तोड़कर ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर सकता है।

स्वामी जी के मतानुसार तत्वतः मनु य रूप, रंग, लिंग, भाषा, वेश–भूषा से परे ब्रम्ह स्वरूप है। अज्ञानता के कारण वह स्वयं को बॉंध लेता है जागतिक मोह–माया में। धर्म, जाति, रूप,

Please cite this Article as : डॉ. जितेन्द्र शर्मा ,चेतना परिष्कार एवं ज्ञानयोग– 'स्वामी रामतीर्थ: International Journal Of Creative Research Thoughts, Volume 1, Issue.1, January 2013

रंग, लिंग, भाषा वेश–भूषा की क्षुद्र सीमितता में। इस अज्ञानता का या अविद्या का विनाश ज्ञान द्वारा ही हो सकता है। जो पिण्ड में है। वही ब्रम्हमांड में है। इस प्रकार की ब्रह्ममात्मैक्य अनुभति को ज्ञान की संज्ञा दी जाती है। इस तत्व ज्ञान के साक्षात्कार हेतु चार साधन बतलाये गये हैं, जिसे साधन चतु टय की संज्ञा दी जाती है। साधन चतुष्टय की सिद्धि के उपरान्त श्रवण, मनन, निदिध्यासन की कठोर साधना से सफलता पूर्वक गुजरने के बाद साधक को 'अहं ब्रह्ममास्मि' की अनुभूति होने लगती है। चेतना की इस भाव भूमि में अवस्थित होते ही जीवात्मा समस्त सीमितताओं से ऊपर उठ जाती है। इस ब्रह्मी स्थिति में अवस्थित हो जाने पर क्या जड़, क्या चेतन, क्या अपना, क्या पराया, प्रकृति के समस्त बाह्य रूप अपनी ही सत्ता प्रतीत होने लगते हैं। स्वामी जी चेतना, परि कार की इस पद्धति द्वारा करोड़ों भारतीयों के हृदय में व्याप्त दैर्वल्य का विनाश कर उसमें ब्रम्ह का अपूर्व तेज और शौर्य भर देना चाहते थे। इस प्रकार ज्ञानयोग की साधना द्वारा कोई भी साधक अपने व्यक्तित्व को महानतम बना सकता है, ब्रह्मात्मैक्य की अनुभूति कर सकता है।

शोध आलेख

जीवन और जगत के यथार्थ स्वरूप का अनुसंधान भारतीय मनीषा की महानतम उपलब्धि है। चार्वाक दर्शन को छोड़कर प्रायः समस्त भारतीय दर्शन इस बात में एक मत है कि जीवन और जगत के प्रति असम्यक् अथवा अविद्या पूर्ण दृष्टि ही समस्त दःखों का मूल कारण है। मनुष्य के यथार्थ स्वरूप के प्रश्न का समाधान करते हुए वेदान्त कहता है– तत्त्वतः मनुष्य रूप, रंग, लिंग, भाषा–वेशभूषा से परे ब्रम्हस्वरूप है। अज्ञानता के कारण वह स्वयं को बॉध लेता है जागतिक मोहपाश में। धर्म, जाति, रूप, रंग, लिंग भाषा–वेशभूषा की क्षुद्र सीमितता में। ऐसे माया मोह में आसक्त विषयी मनुष्यों को ऋषि निर्देशित करता है

अत्रात्मबुद्धिं त्यज मूढ़बुद्धे, त्वड्. मांसमेदोऽस्थिपुरी ाराशौ

सर्वात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे, कुरू व शांतिं परमांभजस्व।[1]

स्वामी रामतीर्थ भी इसी वेदान्तिक आर्श परम्परा के समकालिक चिन्तक हैं। स्वामी रामतीर्थ का भी विचार आत्मा और ब्रम्ह की एकता का ही प्रतिपादन करता है। अज्ञानता के

कारण ही भेद–दृष्टि का उदय होता है। ब्रम्हज्ञान हो जाने पर आत्मा और ब्रम्ह की अभेदता की साक्षात् अनुभूति होने लगती है। स्वामी रामतीर्थ का मन्तव्य है–मन तो शुदम्, तो मन शुदी, मन तन शुदम् तो जॉ शुदी, ता कस न गोयद बाद अजीं, मन दीगरम तो दीगरो।

भावार्थ– मैं तू हुआ तू मैं हुआ, मैं देह हुआ तू प्राण हुआ, अब कोई यह न कह सके, मैं और हूँ तू और है।[2]

परन्तु जन्म जन्मान्तर से माया–मोह में आबद्ध जीवात्मा अपनी इस ब्राम्ही स्थिति को कैसे प्राप्त करे? चेतना का परि कार कैसे किया जाए? इस प्रश्न का उत्तर देने के पूर्व आज के मानव मन की स्थिति पर विहंगम दृश्टि डाल लेना प्रतिपाद्य की सुस्पष्टता हेतु आवश्यक है। आज की स्थिति में जीवन या तो शक्ति विहीन है अथवा अपनी संचित शक्ति का दुरूपयोग करने की दिशा में अग्रसर है। इतना ही क्यों प्रायः हर तरफ भ्रम, भुलावे, भटकाव की स्थिति बनी हुई है। परिस्थिति व मनः स्थिति में गहन असामंजस्य की स्थिति बनी हुई है। जो परिस्थितिवश सामने है मन उससे असंतुष्ट है। इसे या तो कुछ अतिरिक्त चाहिए अथवा फिर मॉग किसी अन्य की है। इस असामंजस्य ने जीवन को निराशा, हताशा और अवसाद में डाल रखा है। उचित– अनुचित का भेद उसे पता नहीं चलता। बस लालसायें उसे जिधर मोड़ती हैं वह उधर ही मुड़ जाता है। कामनायें उसे जिस ओर प्रेरित करती हैं वह उधर ही प्रवर्तित होता है। वासनाओं के अंधे तूफान उसे दिशाविहीन बनाकर जिधर–किधर उड़ाते रहते हैं। ऐसे में बड़ा ही हास्यास्पद बना रहता है उसका जीवन। ऐसा हो भी क्यों न? आखिर वह जीवन के सुपथ और उसके प्रकाश से वंचित जो है। ऐसे ही कामासक्त विषयी लोगों को उपदेश देते हुए आचार्य चाणक्य कहते हैं–

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोह समो रिपुः
नास्ति कोपसमो वह्निर्नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्।।[3]

कठोपनिषद् का ऋषि तो धन, पद, प्रति ठा में डूबे मनुष्यों को मूढ (मूर्ख) की संज्ञा देता है–

न साम्परायः प्रतिभाति बालं, प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेनमूढ़म।

अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।[4]

स्वामी रामतीर्थ का मन्तव्य है कि ज्ञानयोग की साधना के द्वारा मनुष्य न केवल चतुर्दिक व्याप्त माया–मोह के विकट पाश को काट सकता है। बल्कि चेतना परि कार करते हुए स्वयं ब्राम्ही स्थिति को प्राप्त कर सकता है। 'स्वमहिम्निप्रतिष्ठितः' के आदर्श को साकार कर सकता है। आइये, ज्ञानयोग पर स्वामी रामतीर्थ की अन्तर्दृष्टि की गवेशणात्मक विवेचना करें– "जो पिंड में है वही ब्रम्हांड में है" इस प्रकार की ब्रह्मात्मैक्य अनुभूति को ज्ञान की संज्ञा दी जाती है। अनादि, अविद्या के वशीभूत होकर व्यक्ति आत्मस्वरूप को विस्मृत कर जाता है और उसे ब्रम्ह के स्थान पर चाक्चिक्य पूर्ण जगत ही एकमात्र सत्य प्रतीत होने लगता है। ऐसी स्थिति में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान की त्रिपुटी का सर्वथा विलय हो जाता है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए जिन प्रक्रियाओं एवं साधनों का सहारा लिया जाता है उसे ज्ञानयोग कहते हैं।

अद्वैत वेदान्त में आत्म साक्षात्कार हेतु चार साधन बतलाये गये हैं जिसे साधन चतुष्टय की संज्ञा दी जाती है। साधन चतुष्टय की सिद्वि के उपरान्त श्रवण, मनन, निदिध्यासन की प्रक्रियाओं से गुजरने के बाद साधक को 'अहं ब्रह्मास्मि' की अनुभूति होने लगती है–

साधन चतुश्टय निम्नलिखित है–

आदौ नित्यानित्य वस्तु विवेकः परिगण्यते

इहामुत्रफलभोग विरागस्तदनन्तरम्

शमादिषट्क सम्पत्ति मुमुक्षत्वमिति स्फुटम्।।[5]

परमतत्व या परम ज्ञान का स्वयं साक्षात्कार भारतीय आर्ष परम्परा की अनूठी विशेषता रही है। भारतीय ऋषि कथावाचक न होकर आत्मद्र टा रहा है। स्वयं साधना की कठोर सीढ़ियों से गुजरने के बाद ही वह संसार को ज्ञान की शिक्षा देना चाहता है। उसके स्वयं के

जीवन में कथनी और करनी में कोई भेद नहीं होता है। उसका सदाचरण ही संसार के लिए शिक्षा होती है। साधन चतुष्टय के प्रत्येक पद सोपान की स्वामी जी ने अपने जीवन में कठोर साधना की थी। स्वामी रामतीर्थ में बचपन से ही एक मुमुक्ष के सारे गुण विद्यमान थे। मन की चंचल वृत्तियों पर तो उसने किशोर वय से ही नियन्त्रण स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था। डॉ0 जयराम मिश्र, स्वामी रामतीर्थ के जीवन दर्शन पर प्रकाश डालते हुये लिखते हैं – "राम का मन एक बार बिगड़ गया। लाहौर में वह अपने कोठे पर चढ़ा था। वहॉ उसने किसी स्त्री को नग्न देखा, जिससे उसका मन बिगड़ा, मगर मन की इस अवस्था को देखकर वह तत्काल छाती कूटने और रोने लगा और उस दिन से वह इस बात का पक्का इरादा कर लिया कि या तो हम मरेंगे या मन को मारेंगे।"

ज्ञानयोग की शास्त्रीय मीमांसा से स्वामी जी प्रायः स्वयं को दूर रखना चाहते थे। वे तो गिरि कन्दराओं में छिपे पड़े, साधु–संन्यासियोंके अन्तर्मन में विद्यमान वेदान्तिक ज्ञान का भारतीयों को व्यावहारिक प्रशिक्षण देना चाहते थे। वे परम ज्ञानी होने के साथ ही साथ योग्य गुरू और प्रशिक्षक भी थे। वे जन्मजात तितिक्षु थे। एक स्थान पर वे स्वयं लिखते हैं– "देवदारू और चीड़ के वृक्षों के नीचे आराम से लेटा हूॅ। कोमल रेत ही मेरा बिस्तर है। एक टॉग को दूसरी टॉग पर रखे मौज से ताजी वायु की चुस्कियॉ ले रहा हूॅ।"[6]

अद्वैत वेदान्त में आत्मासाक्षात्कार के जो छः साधन बतलाये गये हैं लगता है स्वामीजी में वे सारे गुण प्रकृतिज थे। उनके विद्यार्थी जीवन की एक घटना से उनके श्रवण, मनन, निदिध्यासन की सिद्धिपर प्रकाश पड़ता है। उनका कथा श्रवण के प्रति अनुराग बचपन से ही बना रहा। एक बार राम ने अपने अध्यापक से कथा सुनने की आज्ञा मांगी, परन्तु उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। इस पर राम अत्यन्त दुःखी हुये और उनके नेत्रों में जल भर आया। उन्होने आर्द्र होकर कहा, साहब! मुझे कथा में जाने की आज्ञा दीजिये, मैं एक घन्टे वाले अवकाश में पाठशाला का सारा कार्य पूरा कर लिया करूॅगा। उनकी इस नि ठा से अध्यापक, महोदय द्रवीभूत होकर कथा श्रवण हेतु जाने की आज्ञा दे दी।

स्वामी जी ने संसार के वि ायभोगों को अनित्य, क्षणभंगुर और बन्धन का हेतु भली–भॉति हृदयंगम कर लिया था। इससे उनमें उच्च कोटि की मुमुक्षवृत्ति जाग्रत हुई थी। आत्मासाक्षात्कार हेतु वे दिन–रात छटपटाते रहते थे। आत्मस्वरूप की प्राप्ति हेतु वे रात–रात रोते रहते थे। सबेरे उनका बिस्तर ऑसुओं से तर–बतर पाया जाता था। निदिध्यासन के सम्बन्ध में स्वयं स्वामीजी कहते थे– 'अकेले कर्मों से मुक्ति नहीं मिलती। ईसामसीह में विश्वास करके भी मुक्ति नहीं प्राप्त की जा सकती। पहले अपनी आत्मा को समझना होगा और उसी क्षण तुम मुक्त हो।'[7]

चेतना की इस भावभूमि में अवस्थित होते ही जीवात्मा समस्त सीमितताओं से ऊपर उठ जाती है। इस ब्राम्ही स्थिति में अवस्थित हो जाने पर क्या जड़, क्या चेतन, क्या अपना, क्या पराया, प्रकृति के समस्त वाह्यरूप अपनी ही सत्ता प्रतीत होने लगते हैं। सारी वनस्पतियॉ, पशु–पक्षी ही क्या? प्राणिमात्र ही आत्मवत् प्रतीत होने लगता है। – "तथाकथित सभ्यों से" नामक अपनी कविता में स्वामी जी लिखते हैं–

ओ पृथ्वी, सातों सागर ओ तुम मेरे पुत्र–पुत्रियॉ हो,
ओ सभी वनस्पति, पशु–पक्षी टूटे सब सीमा बन्धन लो,
गाओ अजस्त्र स्वर से गाओ, ओ त्राहि माम्! ओ त्राहि माम्!

स्वामी रामतीर्थ के जीवन का एक मात्र उद्देश्य मनुष्य की प्रसुप्त आत्मा को जगाना था, मानवीय चेतना का परि कार करते हुए उसे ब्राम्ही स्थिति अथवा ईश्वर मनुष्य के स्तर तक ले जाना था। स्वामी जी चेतना परि कार की इस पद्धति (ज्ञानयोग) द्वारा करोड़ों भारतीयों के हृदय में व्याप्त दौर्बल्य का विनाश कर उसमें ब्रम्ह का अपूर्व तेज और शौर्य भर देना चाहते थे। ब्रम्ह अथवा आत्मा का साक्षात्कार हो जाने पर मनुष्य समस्त इच्छाओं का स्वामी हो जाता है। वह द्वन्द्वातीत, त्रिगुणातीत, मायापति, माया से रहित, निर्भय, निरंजन, निराकार, सर्वशक्तिमान सर्वनियंता परमात्मा हो जाता है। उनका कथन है–

"एक बार अनुभव करो कि तुम स्वयं अपने भाग्य विधाता हो, फिर देखो तुम कितने सुखी हो जाते हो, जब तुम ऊँ जपते हो और तब तुम यह भान करते हो कि अपने भाग्य के तुम आप ही स्वामी हो, तब रोने–झींकने, दुःखी होने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। अपने आपको परिस्थिति का गुलाम मत समझो। इस सत्य को पहचानो, इस सत्य का अनुभव करो कि तुम अपने भाग्य के आप विधाता हो। तुम चाहे जिस दशा में हो, वातावरण कुछ भी हो। देह चाहे कारागार में डाल दी जाय अथवा तेज धार में बहा दी जाय या किसी के पैरों तले कुचली जाय, याद रखो – *मैं ईश्वर हूँ।*"[8]

संदर्भ सूची

1. विवेक चूड़ामणि, लोक सं. 163, गीता प्रेस गोरखपुर।
2. मिश्र डॉ0 जयराम, स्वामी रामतीर्थ– जीवन और दर्शन, पृष्ठ 66, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1965
3. चाणक्य नीति 5/12
4. कठोपनिषद 1/2/6, गीता प्रेस गोरखपुर।
5. विवेक चूड़ामणि, पृष्ठ 5, गीता प्रेसगोरखपुर।
6. जीवन–स्वामी रामतीर्थ पृष्ठ 49, आर0 बी0एस0 प्रकाशन हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
7. सूक्तियॉ, उपदेश और सन्देश– स्वामी रामतीर्थ, पृष्ठ 45, आर0बी0 एस0 प्रकाशन हरिद्वार।
8. मिश्र डॉ0 जयराम– स्वामी रामतीर्थ –जीवन और दर्शन, पृष्ठ 304 लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1995